इकाई 26 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस — समाजवादी विचारधारा नेहरू एवं बोस की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में समाजवादी विचारों के बढ़ते प्रभाव की चर्चा करेंगे । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रारंभिक दौर के कांग्रेसी नेताओं के समाजवाद के प्रति रवैये की व्याख्या कर सकेंगे,
- समाजवादी विचारों के कांग्रेस पर प्रभाव की विवेचना कर सकेंगे,
- समाजवादी विचारों की ओर जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस के झुकाव को समझ सकेंगे, और
- कांग्रेस के भीतर ही इन विचारों पर सहमति जुटाने के उनके प्रयासों के बारे में बता सकेंगे ।

26.1 प्रस्तावना

मोटे तौर पर समाजवाद का लक्ष्य असहाय मानव-जाति के एक बड़े हिस्से पर हो रहे शक्तिशाली अल्पसंख्यक शोषक वर्ग के शोषण को समाप्त करना है । यह समाज में उनके प्रति अन्याय और असमानता की भावना को दूर करने का प्रयास करता है । इन लक्ष्यों को पाने के लिए या समाजवादी समाज की स्थापना के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से बहुत से सिद्धान्त सामने आने लगे । (इसके बारे में आपने इकाई-12 में पढ़ा है) । बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक विशेष रूप से पश्चिम में वे एक समर्थक वर्ग तैयार करने में सफल हुए । भारत अंग्रेज़ी शासन के दबाव तले कराह रहा था । इसके प्राकृतिक और आर्थिक संसाधनों का इस्तेमाल अंग्रेज़ों की समृद्धि के लिए हो रहा था, जबकि भारत की अपनी जनता पीड़ित और ज़रूरी वस्तुओं से वंचित थी । भारतीय जनता निम्नलिखित कारणों से ग़रीब, अपमानित और विभाजित थी :

- अंग्रेज़ों ने अपने मित्र भारतीय समाज के सम्पन्न और प्रभावशाली वर्ग से चुने,
- अंग्रेज़ों ने भारत में राजाओं, ज़मींदारों और साहूकारों को किसानों का शोषण करने की छूट दे रखी थी,
- अंग्रेज़ों द्वारा व्यापारिक घरानों और उद्योगपतियों को मज़दूरों का शोषण करने की छूट मिली हुई,

थी, और

अत्यन्त निपुणता से उन्होंने एक सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय के खिलाफ़ खड़ा किया ।

इन परिस्थितियों में यह स्वभाविक ही था कि कुछ देशप्रेमी बुद्धिजीवी, और जुझारू भारतीयों का ध्यान समाजवादी विचारधारा की ओर आकर्षित होता, विशेष रूप से वे भारतीय जो पश्चिमी देशों में रह चुके थे, या वहाँ से किसी रूप में संबंधित थे । मैडम कॉमा, श्यामजी कृष्ण वर्मा, शापुरजी सकलातवाला, के. एस. भट्ट, वीरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय, त्रिमुल आचार्य, भूपेन्द्र नाथ दत्त, पी. एस. कंकौजा, जी. ए. के. लुहानी तथा अनेकों और लोग इसी श्रेणी में आते हैं । प्रथम विश्व युद्ध के शुरू होने से पहले उन्होंने विदेश से ही समाजवादी आंदोलन का संचालन किया । इनमें से किसी भी प्रमुख व्यक्ति या युद्ध के दौरान सक्रिय राजनीतिज्ञ जैसे एम. एन. राय और लाला हरदयाल ने भारत के मुख्य राष्ट्रवादी संगठन इंडियन नेशनल कांग्रेस के ढांचे के भीतर काम नहीं किया था । इसी कारण वे इसकी गतिविधियों, नीतियों और कार्यक्रमों पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाये । वास्तव में प्रथम विश्व युद्ध के बाद के सालों में हुए देशव्यापी असहयोग आंदोलन (1920-22) की समाप्ति तक समाजवाद ने कांग्रेस के राजनीतिक व्यवहार पर कोई असर नहीं डाला । परन्तु, इसके बाद समाजवादी विचार कांग्रेस की नीतियों को प्रभावित करने लगे और उन्होंने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । इस इकाई में इस पर चर्चा करेंगे कि समाजवादी विचारों ने किस तरह कांग्रेस को प्रभावित किया । इस प्रक्रिया में हम, नेहरू तथा बोस ने क्या भूमिका निभाई, इसकी चर्चा भी करेंगे ।

26.2 समाजवादी विचार और कांग्रेस के प्रारंभिक दौर के नेता

इंडियन नेशनल कांग्रेस के वे नेता जो जनता में लोकप्रिय थे, और ब्रिटिश सरकार और इसकी नीतियों के आलोचक थे, शुरू से ही समाजवाद या समाजवादी परंपरा से अवगत थे । ये नेता समाजवादी गतिविधियों के सम्पर्क में भी आये । उदाहरण के लिए, दादा भाई नौरौजी का एस. एम. हिंडमैन जैसे ब्रिटिश समाजवादियों से निकट सम्पर्क था और वास्तव में, उन्होंने एमस्टर्डम (अगस्त 1904) में हुई अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी कान्फ्रेंस में हिस्सा लिया जहां उनका भव्य स्वागत हुआ था । बाल गंगाधर तिलक और लाला लाजपत राय जैसे नेताओं ने भी समय-समय पर कुछ समाजवादी संबंध कायम रखे थे । ये अक्सर निजी सम्पत्ति की बुराइयों पर विचार करते थे और सभी के लिए समान अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता महसूस करते थे । कांग्रेस के भीतर ऐसे अनेकों व्यक्ति थे जो उन्हीं की तरह जानकार थे और समाजवाद की ओर पूर्ण स्वीकृति से झुके हुए थे ।

हालांकि वास्तविकता यह है कि प्रारंभिक दौर के राष्ट्रीय नेता अपने आपको समाजवादी विचारधारा के साथ गंभीर रूप से नहीं जोड़ पाये । संभवतः इनमें से अधिकांश लोगों ने यह सोचा कि शायद इन विचारों को अपनाने से राष्ट्रीय जागरूकता पर प्रभाव पड़े और कांग्रेस जिस राष्ट्रीय एकता को बनाने का प्रयास कर रही है वह कमज़ोर हो जाए । कांग्रेस के प्रारंभिक दौर से ही राष्ट्रीय आंदोलन अंग्रेज़-कुशासन के खिलाफ़ संयुक्त आंदोलन या स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य के लिए एक मुहिम के रूप में उभरा था । इस "एकीकरण" या "संगठन" में सभी समुदायों, श्रेणियों और वर्गों के लोग, अमीर और ग़रीब, ज़मींदार और भूमिहीन, मिल-मालिक और मज़दूर सभी शामिल थे । ऐसा प्रतीत होता है कि कांग्रेसी नेता अपने शुरू के दौर में इस बात से भयभीत थे कि शोषितों को शोषकों के खिलाफ़ संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित करने वाला, मज़दूरों को उद्योगपतियों के खिलाफ़ करने वाला समाजवाद अमीर और सम्पन्न लोगों को राष्ट्रीय आंदोलन का विरोधी बना देगा । उस हालत में उनका समर्थन और उनकी धन-शक्ति राष्ट्रवादी हित के लिए उपलब्ध नहीं होगी । इस तरह की आशंका अंग्रेज़ अधिकारियों और उनके भारतीय सहयोगियों के बीच के संबंधों की प्रकृति को ठीक से न समझने के कारण थी । साथ ही गरीबी के मारे हुए करोड़ों उत्पीड़ित लोगों को साम्राज्य-विरोधी संघर्ष में एकजुट करने की समाजवाद की क्षमता को भी ठीक से न समझने के परिणामस्वरूप थी ।

प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों ने समाजवाद के प्रति जिस प्रकार शंका व्यक्त की वह स्वाभाविक ही थी । इनमें से अधिकांश लोग पश्चिमी शिक्षा प्राप्त और भारतीय समाज के उच्च-वर्ग से संबंधित थे जिनमें किराया जीवी, व्यावसायी और उद्यमी शामिल थे । इस प्रकार के तत्व आम आदमी के दुर्भाग्य पर दूर से सहानुभूति दर्शा सकते थे और वह भी उसी सीमा तक कि उनके ख़ुद के हितों को ख़तरा न पहुँचे । इसके अतिरिक्त, प्रथम विश्व युद्ध तक, कांग्रेस के राष्ट्रवादी अंग्रेज़ शासन से प्रस्तावों, प्रतिनिधित्व और बहसों द्वारा सिर्फ़ रियायतें पाने की कोशिश कर रहे थे । वे प्रमुखतः अंग्रेज़ अधिकारियों द्वारा निश्चित की गयी सीमाओं के भीतर संवैधानिक राजनीति और आंदोलनों में व्यस्त थे । उन्होंने स्वदेशी आंदोलन (1905-8) के एकमात्र अपवाद को छोड़कर किन्हीं जन-आंदोलनों को चलाने

या जनप्रिय कार्यवाहियों के लिए सामान्य रूप से सोचा भी नहीं था ।

भारतीय जनता प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों के राजनीतिक कार्यक्रम का अभिन्न अंग नहीं थी । इसलिए उन्होंने जनता के निकट जाने की आवश्यकता महसूस नहीं की । फिर भी यह कहना ठीक नहीं होगा कि कांग्रेस के प्रारंभिक दौर के नेताओं ने उत्पीड़ितों, प्रताड़ितों और पददलितों को बिल्कुल अपने ध्यान में नहीं रखा या उन्हें अपनी भावी योजनाओं में किसी तरह भी शामिल नहीं किया । उन्हें इस बात पर विश्वास था कि स्वराज प्राप्ति के राजनीतिक लक्ष्य को पूरा करने मात्र से भारत अपने-आप एक सुखी और समृद्ध देश में बदल जायेगा । उनका विश्वास था कि एक बार समृद्धि वापस लौटने से आर्थिक विषमता की बुराइयाँ देश से ग़ायब हो जायेंगी और एक न्यायसंगत तथा उचित व्यवस्था उभरेगी । सही हो या ग़लत इस तरह के विचार लंबे समय तक, यहाँ तक कि 1930 के मध्य तक कांग्रेस की कार्यवाही पर प्रभुत्व बनाये रहे । किंतु बदलते हुए राजनीतिक वातवारण में इस प्रभावशाली विचारधारा के समानान्तर कांग्रेस में उभरते हुए नये विचारों को रोका नहीं जा सका ।

26.3 नया वातावरण : असहयोग आंदोलन

नया राजनीतिक वातावरण प्रथम विश्व युद्ध के बाद की आर्थिक मंदी के दौरान आया । यह वह दौर था जब वस्तुओं के बढ़ते दामों और सरकार के बढ़ते हुए दमन ने भारतीय जनजीवन में तबाही मचा दी । गांधी जी के नये और प्रेरणादायी नेतृत्व में गहरे सोच-विचार के बाद कांग्रेस ने अंग्रेज़ अधिकारियों के साथ शांतिपूर्ण असहयोग का रास्ता अपनाने का फ़ैसला लिया । यह एक ऐसा रास्ता था जिसकी सफलता पूरी तरह से जनता की व्यापक हिस्सेदारी पर निर्भर थी । असहयोग आंदोलन ने समाज के लगभग सभी वर्गों में अभूतपूर्व उत्साह जगाया तथा भारतीय जनता ने जिस महान शक्ति का प्रदर्शन किया, उससे देश में राजनीतिक गतिविधियों के बारे में कांग्रेस की धारणा में समग्र परिवर्तन आया । इसके बाद से जनता को एकत्रित करना भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का आदर्श नारा बन गया और इसका प्रत्येक कदम जनता को जगाने या बहुत बड़ी संख्या में लोगों को साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में आगे लाने की इच्छा से प्रेरित था ।

ज़ाहिर है कि भारतीयों में एकता की ज़रूरत और विभिन्न वर्ग के लोगों को एकताबद्ध करने की आवश्यकता का महत्व यथावत बना रहा । संख्या बढ़ाने के लिए, उपेक्षित श्रेणियों जैसे जनजातियों, किसानों, मज़दूरों और महिलाओं को भी आंदोलन में शामिल करने की अत्यावश्यकता महसूस की गयी । असहयोग आंदोलन से केवल प्रेरणा ही नहीं मिली वरन् यह अपने पीछे इसके अचानक वापस ले लेने के तरीके के कारण उत्पन्न निराशा की गहरी छाप भी छोड़ गया । बहुत से लोग उस नैतिक आधार की सराहना नहीं कर पाये जिसे गांधी जी ने आंदोलन को वापस लेने के लिये चुना था । उन्हें ऐसे समय में आंदोलन की वापसी की घोषणा से निराशा हुई, जब वे यह समझ रहे थे कि उन्होंने अंग्रेज़ी राज की घेराबंदी कर ली है, "एक साल के भीतर ही स्वराज" प्राप्ति होगी, लेकिन इसमें असफलता से निराशा हुई । यह एक गांधीवादी वादा था जिस पर जनता ने अपनी उम्मीदें लगा रखी थीं । कुछ क्षेत्रों में, विशेषकर ग्रामीण इलाकों में ज़मींदारों और काश्तकारों के बीच जनता की बेचैनी की वजह से वातावरण विक्षुब्ध हो गया । गांधी जी के उपर्युक्त दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय से उनके कुछ अनुयायियों ने संवैधानिक तरीकों का अनुसरण करने में ही अपनी कुशल समझी । सबसे बुरा तो यह हुआ कि गांधीवाद की सबसे अधिक प्रभावशाली उपलब्धि हिंदू-मुस्लिम मैत्री में एक दरार पैदा हो गयी । दोनों सम्प्रदायों का अंतर और अधिक बढ़ गया । जिससे देश के अनेक भागों में साम्प्रदायिक हिंसा भड़क उठी । (विशेष रूप से पंजाब, राजस्थान, यू.पी., बंगाल, आन्ध्र और मालाबार में) । कुल मिलाकर, असहयोग आंदोलन के बेचैन कर देने वाले परिणामों ने कुछ उदारमना कांग्रेसियों पर ज़ोर डाला, खासकर, उन कांग्रेसियों पर जो न तो "परिवर्तन विरोधी" (जिन्होंने कुछ समय के लिए अपने-आपको स्वदेशी प्रचार, हरिजन उद्धार इत्यादि कार्यों में लगा लिया था) थे और न ही "परिवर्तन समर्थक" (जिन्होंने कुछ समय के लिए अपने-आपको संविधानवाद में संलग्न रखा) गुट में शामिल हुए । उन्होंने बहुत विचार करके कुछ अप्रीतिकर सवालों का जवाब ढूँढने का घोर प्रयास किया । वे सवाल निम्नलिखित जान पड़ते हैं :

- वे कौन से आधार थे जिस पर विभिन्न वर्ग और सम्प्रदाय राजनीतिक रूप से एकजुट रह सकते हैं ?
- स्वतंत्रता के संघर्ष में जनता की अधिक से अधिक हिस्सेदारी को बनाये रखने के लिए क्या किया जाना चाहिए ?
- मेहनतकश लोगों को साम्राज्यवाद विरोधी दल में लाने के कौन से तरीके थे ?
- वे कौन–कौन से उद्देश्य थे जिन्हें साम्राज्यवाद–विरोधी संघर्ष के द्वारा प्राप्त किया जाना था, और

- अनुमानतः भारतीय स्वतंत्रता का परिणाम क्या हो सकता है ?

दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय आंदोलन के भीतर एक ऐसी उपयुक्त विचारधारा की खोज शुरू हो गई जो स्वतंत्रता संघर्ष के लिए मार्गदर्शक का काम कर सके । कांग्रेस के भीतर समाजवाद का जन्म इसी गहन बौद्धिक तथा राजनीतिक प्रयास का ही परिणाम था ।

बोध प्रश्न 1

1) प्रारंभिक दौर के ऐसे तीन महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी नेताओं के नाम बताइये जो समाजवादी विचारों के सम्पर्क में आये ।

   i)

   ii)

   iii)

2) प्रारंभिक दौर के कांग्रेसी नेता भारत में समाजवादी विचारों को अपनाने से क्यों हिचकते थे ?

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

3) असहयोग आंदोलन को वापस लेने के बाद कांग्रेस को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा ?

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

26.4 जवाहरलाल नेहरू और समाजवाद

भारत के भविष्य पर विचार करने वालों में युवा जवाहरलाल नेहरू भी थे, जिन्होंने असहयोग आंदोलन के दौरान अपना प्रभाव छोड़ा था । अधिक महत्वपूर्ण यह है कि जवाहरलाल नेहरू ने इसी बीच (1920-21) यू. पी. में प्रतापगढ़ और राय बरेली के किसानों के बीच काम करके कृषि समस्याओं पर कुछ ज्ञान हासिल कर लिया था । यद्यपि जवाहरलाल गांधी जी के नेतृत्व में विश्वास रखते थे फिर भी वे उनके असहयोग आंदोलन को वापस लेने के निर्णय के आलोचक थे । वे न तो परिवर्तन विरोधियों के विचारों से सहमत थे, न ही परिवर्तन समर्थकों के । हिन्दू, मुसलमानों और कुछ हद तक सिक्खों के बीच बढ़ती हुई साम्प्रदायिक कटुता से वे चिन्तित थे । घबराहट और उलझन की इस स्थिति में जवाहरलाल को 1926 में यूरोप जाने का अवसर मिला जिसका मुख्य उद्देश्य स्विटजरलैंड में अपनी बीमार पत्नी कमला का इलाज कराना था ।

12. जवाहरलाल नेहरू

26.4.1 नेहरू का समाजवाद से सम्पर्क

इस यात्रा के दौरान उन्हें भारत में स्वतंत्रता संग्राम को बेहतर ढंग से समझने के लिए विश्व के नये विचारों को खोजने का मौका मिला । नेहरू पहले भी ब्रिटेन में अपने छात्र जीवन में फैबियन समाजवाद के विचारों से परिचित थे किन्तु मार्क्सवाद सहित, समाजवाद के अन्य विभिन्न रूपों के बारे में ज्यादा नहीं जानते थे । औपनिवेशिक शक्ति के खिलाफ जन संघर्ष में समाजवादी दृष्टिकोण की प्रासंगिकता के बारे में उनकी समझ अभी अपर्याप्त थी । इसीलिए राजनीतिक शिक्षा की दृष्टि से जवाहरलाल का यूरोप में डेढ़ साल का प्रवास उनके खुद के विकास और कांग्रेस पार्टी की नयी दिशा, दोनों के लिए काफी महत्वपूर्ण साबित हुआ । यूरोप में वे राजनीतिक विचारकों और आंदोलनों के संपर्क में आये । उन्हें औपनिवेशिक उत्पीड़न और साम्राज्यवाद के खिलाफ, फरवरी, 1927 को ब्रूसेल्स में हुई अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया । वहां वे चीन, मैक्सिको और अन्य लातीनी अमरीकी, अफ्रीकी तथा एशियाई देशों के अनेकों प्रतिनिधियों के साथ-साथ यूरोपीयन परिवर्तनवादी परम्परा के श्रेष्ठ प्रवक्ताओं से भी मिले । विचारों और अनुभवों के आदान-प्रदान से जवाहरलाल पर काफी गहरा असर पड़ा । उन्हें साम्राज्यवाद विरोधी और राष्ट्रीय स्वाधीनता लीग (लीग अगेन्स्ट इम्पीरियलिज़्म एन्ड फॉर नेशनल इन्डिपैन्डैन्स) की, जो कि ब्रूसेल्स कांफ्रेंस द्वारा स्थापित एक संगठन था, कार्यकारिणी समिति का सदस्य नियुक्त किया गया । तभी से जवाहरलाल नेहरू ने यह महसूस किया कि किस तरह यूरोपीय पूंजीवाद जिसे औद्योगिक उत्पादन के कच्चे माल और तैयार वस्तुओं के लिए विस्तृत बाज़ारों की आवश्यकता थी, साम्राज्यवाद के रूप में विकसित हुआ । साथ ही यह भी देखा कि किस तरह यूरोपीय पूंजीवाद एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमरीकी देशों के शोषण के बलबूते पर समृद्ध हो गया ।

26.4.2 नेहरू के दृष्टिकोण में परिवर्तन

विश्व के सभी उपनिवेशों की तरह भारत में भी विदेशी शोषकों के सहयोगी देश के अपने कुछ लोग भी थे। यही कारण था कि विदेशी शासन से स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष को ग़रीबों के तात्कालिक अंदरूनी अत्याचारियों से छुटकारा पाने के लिए संघर्ष से सुव्यवस्थित ढंग से जोड़ना ही था। इसीलिए नेहरू की नजरों में साम्राज्यवादी ताकतों के उपनिवेशों में राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष का अर्थ राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति से कहीं अधिक था। वे देख सकते थे कि भारत का स्वतंत्रता आंदोलन वास्तव में विश्वव्यापी साम्राज्यवादी व्यवस्था के खिलाफ हो रही अंतर्राष्ट्रीय मुहिम का एक अनिवार्य अंग था।

साम्राज्यवाद के विरुद्ध लीग (लीग अगेन्स्ट इम्पीरियलिज्म) में अन्य लोगों के साथ जवाहरलाल ने महसूस किया कि इस अभियान (मुहिम) को रूसी क्रांति (1917) की सफलता से भारी प्रोत्साहन और सोवियत यूनियन की बढ़ती ताकत से महत्वपूर्ण समर्थन मिला है। नवम्बर, 1927 में उन्होंने सरकारी निमंत्रण पर सोवियत यूनियन का दौरा किया। वे सरकार में किए जा रहे नूतन प्रयोगों और सामाजिक पुनर्निर्माण से बहुत अधिक प्रभावित हुए। हालांकि वे रूस और भारत में राष्ट्रनिर्माण के कार्यों के अंतर के प्रति सजग थे किंतु राष्ट्रवादी राजनीति या ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ अहिंसात्मक जन आंदोलनों की क्षमता में गांधी जी के नेतृत्व पर उनका विश्वास अब भी अडिग बना रहा। फिर भी उन्होंने रूसी अनुभवों से सीखा और भारतीय संदर्भ में उसका पूरा उपयोग करने की इच्छा रखी। दिसम्बर, 1927 में जब जवाहरलाल भारत लौटे तो वे हर दृष्टि से समाजवादी बन चुके थे। 1927-28 में ही यह कल्पना की जा सकती थी कि यदि जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्रीय स्तर के नेता द्वारा समाजवादी विचारों को स्वीकार किया गया है तो कांग्रेस की नीतियों और गतिविधियों पर, इनका भारी प्रभाव अवश्य ही पड़ेगा।

26.4.3 आंतरिक राजनीति पर प्रभाव

1927 में कांग्रेस के भीतर और इसके साथ-साथ ही इसके बाहर विभिन्न प्रकार के राजनीतिक विचार रखने वालों में ज़ोरदार बहस छिड़ गयी। इससे जवाहरलाल नेहरू को अपने हाल ही में प्राप्त किए गए उग्र परिवर्तनवादी विचार (Radicalism) को बल मिला। विवाद का मसला स्वराज (या स्वशासन जिसके लिए वे और अन्य लोग लड़ रहे थे) का विस्तार और उसके स्वरूप से संबंधित था। स्वराज का मुद्दा सहसा अन्य मुद्दों से प्रमुख हो गया। 1927 में अंग्रेज़ शासकों ने इस बात पर विचार करने के लिए कि भारत कुछ और संवैधानिक सरकार प्राप्त करने का पात्र है या नहीं, गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट 1919 की शर्तों के अनुसार एक कमीशन नियुक्त करने का निर्णय लिया जिसमें केवल ब्रिटेन की संसद के सदस्य ही रखे गये। जातीय अहंकार के भोंडे प्रदर्शन के अलावा इस कमीशन के (साइमन कमीशन) गठन में केवल गोरों का ही रहना इस बात का संकेत था कि अंग्रेज़ इस कमीशन में किसी भारतीय को सदस्य बनाने के योग्य नहीं समझते थे, जो भारत के राजनीतिक भविष्य के बारे में उन्हें कुछ सुझाव दे सकता। इस कमीशन की नियुक्ति में अंग्रेज़ सरकार ने न केवल उस विषय पर भारतीय विचारों को सुनने से इन्कार कर दिया जिसका संबंध सबसे अधिक उन्हीं से था, बल्कि इसमें भारतीयों की योग्यता को कम करके देखने का भी प्रयास था। अंग्रेज़ सरकार यह सिद्ध करना चाहती थी कि भारतीय अपने लिए संविधान बनाने के अयोग्य हैं। पूरे भारत में अंग्रेज़ों की इस कार्यवाही की सभी तरह से निन्दा हुई। कांग्रेस ने अपने मद्रास अधिवेशन (दिसम्बर, 1927) में साइमन कमीशन के बहिष्कार का आह्वान किया। जैसाकि 1928 के बाद की घटनाओं से जाहिर होता है कि सरकार के क्रूर दमन के बावजूद बहिष्कार उग्र था। इसकी सफलता में जवाहरलाल और उनके कांग्रेस के सहयोगियों ने विशेष योगदान दिया।

साइमन कमीशन का आगमन इस मसले को सामने लाया कि भारत को अपने लिए किस प्रकार का संविधान या किस किस्म की स्वाधीनता को स्वीकार करना चाहिए। अभी तक स्वराज से कांग्रेस नेताओं का तात्पर्य भारत के लिए ब्रिटिश शासन के घेरे में ही एक डोमीनियन स्टेटस (अधिराज्य) से था। (आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और दक्षिण अफ्रीका के स्वराज की स्थिति वाली सरकार के जैसे ही)। जवाहरलाल और उनके जैसे व्यक्तियों के लिए डोमिनियन स्टेटस को भारत की स्वतंत्रता के समतुल्य मानना न केवल भारत में अंग्रेज़ों की अनिवार्य उपस्थिति को मान्यता देना प्रतीत हुआ बल्कि उन्हें यह पिछले दरवाजे से भारत का ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण का स्थायीकरण भी लगा। दिसम्बर, 1927 के मद्रास अधिवेशन में जवाहरलाल ने डोमीनियन स्टेटस की मरीचिका के बजाय वास्तविक स्वतंत्रता की मांग का प्रस्ताव रखा।

फिर भी विवाद वास्तव में तब बढ़ा जब कांग्रेस की पहल से फरवरी, 1928 में सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया । इसने बर्किनहेड (Birkenhead) की चुनौती (भारतीय ऐसा संविधान बनाने में असमर्थ हैं जो सभी दलों को स्वीकार्य हो) के जवाब में भारत के लिए संविधान बनाने के लिए मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में एक समिति गठित करने का निर्णय लिया । जब नेहरू समिति ने वास्तव में डोमीनियन स्टेटस की प्राप्ति को ही भारतीय स्वतंत्रता का समकक्ष मानकर संविधान निर्माण का काम शुरू किया तो जवाहरलाल के पास उसके विरोध में लोगों को संगठित करने के अलावा कोई चारा नहीं था । डोमीनियन स्टेटस के खिलाफ विरोध को संगठित करने और पूर्ण स्वतंत्रता या ब्रिटेन के साथ सभी असमान राजनीतिक और आर्थिक संबंधों का विच्छेद करने के लिए समर्थन जुटाने में उन्हें अन्य लोगों के साथ विशेषतः युवा सुभाष चन्द्र बोस की सहायता मिली । वे भी जवाहरलाल की तरह ही 1928 में कांग्रेस के महासचिवों में से एक थे ।

बोध प्रश्न 2

1) नेहरू अपने यूरोप प्रवास के दौरान समाजवादी विचारों से किस तरह प्रभावित हुए ?

....

....

....

....

....

2) भारत का स्वतंत्रता संघर्ष पूरे विश्व के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष से किस तरह संबंधित था ?

....

....

....

....

....

26.5 सुभाष चन्द्र बोस और समाजवाद

यद्यपि स्वभाव से भिन्न होते हुए भी सुभाष चन्द्र बोस और जवाहरलाल में कुछ प्रत्यक्ष समानताएं थीं। दोनों ही उच्च-मध्यम वर्गीय पृष्ठभूमि से आये थे और दोनों ने शिक्षा भी विदेश में प्राप्त की । दोनो ही वुद्धिजीवी थे और दोनों ही अपने-आपको भारतीय राष्ट्रवाद के उद्देश्य के प्रति समर्पित मानते थे। सुभाष चन्द्र बोस आरम्भ में स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्रेरित थे जोकि उत्पीड़ितों और प्रताड़ितों के प्रति अपनी सहानुभूति के लिए जाने जाते थे । बोस अपने विद्यार्थी जीवन से ही राजनीतिक कार्यकर्ता थे । जव अप्रैल, 1921 में उन्होंने इंडियन सिविल सर्विस के एक आकर्षक पद को पाने के बाद उसे अस्वीकार कर दिया तो जनता में उनका सम्मान वहुत बढ़ गया । उनके राजनीतिक जीवन के निर्माता गांधी जी नहीं बल्कि देशबंधु चितरंजन दास थे, जिन्होंने 1922 में यह महसूस किया कि भारत को "वर्गों का नहीं बल्कि जनता का स्वराज" प्राप्त करना चाहिए । जवाहरलाल की तरह ही सुभाष असहयोग आंदोलन वापस लेने के आलोचक थे और "परिवर्तन विरोधियों" का साथ दे पाने में असमर्थ थे । यद्यपि कुछ समय के लिए वे "परिवर्तन समर्थकों" के साथ हो गये थे और वह भी वंगाल में उसके प्रमुख समर्थक सी. आर. दास के प्रति अपनी वफादारी के कारण लेकिन सुभाष का हृदय उनके साथ नहीं था । असहयोग आन्दोलन के बाद सुभाष कुछ समय के लिए कलकत्ता के नागरिक मामलों में (जुलाई और अक्तूवर 1924 के बीच) प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी की हैसियत से व्यस्त थे वैसे ही जैसे जवाहरलाल इलाहाबाद में (अप्रैल 1923 से अप्रैल 1925 के वीच अध्यक्ष की हैसियत से) । राजनीतिक जीवन की इस घड़ी में लगता था कि सुभाष भी उसी तरह उन्हीं उलझनों तथा चिंताओं के शिकार थे जितने जवाहरलाल और अन्य नेता । किन्तु इस समय सुभाष को वह मौका नहीं मिला जो जवाहर को विदेश की खुली हवा में सांस लेने से (नये विचारों से प्रभावित) समाजवादियों के सम्पर्क में आने और मार्क्सवादी प्रयोगों की जानकारी से मिला था । साथ ही उन्हें मेहनतकश लोगों के साथ काम करने का लाभ भी नहीं मिला जो जवाहरलाल

13. सुभाष चन्द्र बोस

को (कुछ हद तक) मिला था । वे दूर से ही निम्न वर्गों की महत्वाकांक्षाओं से अवगत रहे । परिणामतः वामपंथ की ओर अपने पूरे झुकाव और सुधारवादी रुख के बावजूद सुभाष को समाजवादी विचारों का उतना स्पष्ट और निश्चित ज्ञान नहीं था, जितना जवाहरलाल को था । दोनों में एक अंतर यह भी था कि जवाहरलाल की तरह सुभाष कांग्रेस के नेता के रूप में गांधी जी के नेतृत्व के प्रति उतनी दृढ़ता से प्रतिबद्ध नहीं थे और न ही उन्हें साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों की पद्धति के रूप में अहिंसा की उपयोगिता पर विश्वास था । लेकिन उन्हें जवाहर के जनता को एकत्रित करने और जन-आंदोलन की तुरंत आवश्यकता के मुद्दे पर कोई मतभेद नहीं था । साथ ही जवाहरलाल के साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टिकोण को मानने में भी कोई कठिनाई नहीं थी ।

26.6 सिद्धांत और व्यवहार में समाजवाद को प्रोत्साहन

अगस्त, 1928 में जवाहरलाल ने कांग्रेस के भीतर एक प्रभावक गुट के रूप में "इंडिपेंडेंस फार इंडिया लीग" की शुरुआत की । इस कार्यवाही के लक्ष्य थे :

- डोमीनियन स्टेटस की धारणा का विरोध करना ।
- अंग्रेज़ों से पूर्ण स्वतंत्रता की मांग करना ।
- समाजवादी आधार पर भारतीय गणतंत्र की स्थापना के लिए कार्य करना ।

सुभाष इस काम में जवाहरलाल के साथ मिल गये और उन्होंने एक साथ मिलकर कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन (दिसम्बर 1928) में कांग्रेस के "डोमीनियन स्टेटस" के लक्ष्य को "पूर्ण स्वराज" में बदलने का प्रस्ताव पेश किया । इस उद्देश्य में वे केवल सीमित सफलता ही प्राप्त कर सके किंतु इस मांग से जागरूकता अवश्य उत्पन्न कर सके । वास्तविक सफलता अगले साल मिली, जब जवाहरलाल कांग्रेस और इसके लाहौर अधिवेशन (दिसम्बर 1929) के अध्यक्ष बन गये और उन्होंने "पूर्ण स्वतंत्रता" को लक्ष्य के रूप में अपनाया । 31 दिसम्बर, 1929 की मध्य रात्रि को लाहौर में कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा स्वतंत्रता का तिरंगा झंडा फहराया गया । और 26 जनवरी, 1930 का दिन पूरे देश में स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया गया । इन दोनों बातों ने यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्रवादी आंदोलन साम्राज्यवाद विरोधी था । किन्तु पूर्ण-स्वतंत्रता का मूल क्या है और स्वतंत्र भारत में आम व्यक्ति की स्वतंत्रता किस प्रकार की होगी अब भी पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं हुआ था ।

फिर भी जवाहरलाल और सुभाष जैसे नेताओं और उनके असंख्य अनुयायियों {जो पहले से ही अधिक सावधानी बरतने वाली और कम जुझारू "दक्षिण पंथी कांग्रेस" (नरम दल) की तुलना में अपने आपको "वामपंथी कांग्रेस" (गरम दल) का कहने लगे थे} की इस सोच को समझना कठिन नहीं था । जवाहरलाल और सुभाष जिस प्रकार सामान्य रूप में आम जनता से और विशेषतः नौजवानों यूथ लीग, हिंदुस्तानी सेवा दल, नौजवान भारत सभा और स्वयं सेवकों के आंदोलन द्वारा छात्रों (छात्र संगठनों और कांफ्रेंसों द्वारा) और मज़दूरों (प्रमुखतः ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के द्वारा जिसकी अध्यक्षता 1929 में जवाहरलाल और 1931 में सुभाष ने की थी) से संपर्क साध रहे थे, उससे यह बात स्पष्ट हो गयी थी । जिस प्रकार से उन्होंने साम्राज्यवाद की प्रकृति का पर्दाफाश किया, मेहनतकश जनता के प्रति अपनी चिंता व्यक्त की और उन्हें सामाजिक-आर्थिक न्याय दिलाने के लिए इच्छा व्यक्त की उससे जनता बहुत प्रभावित हुई । जब सविनय अवज्ञा आंदोलन व्यापक स्तर पर शुरू किया गया था तब नेहरू और बोस दोनों ही जेल में थे (जनवरी से सितम्बर, 1930 तक सुभाष और अप्रैल से अक्तूबर, 1930 तक जवाहरलाल) । फिर भी, आंदोलन के बढ़ते हुए सामाजिक आधार में उन्होंने अपने ढंग से योगदान दिया और विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को इसमें भाग लेने के लिए प्रेरित किया । इसके साथ-साथ ही जवाहरलाल और सुभाष चाहे जेल के अंदर हों या इसके बाहर उनके अपने विचार एक निश्चित आकार ले रहे थे ।

यह विशेष रूप से जवाहरलाल के लिए अधिक सच था, जोकि इस बात का संकेत देने में समर्थ थे कि कांग्रेस को किस प्रकार की स्वतंत्रता के लिए लड़ना चाहिये । अपने मौलिक अधिकारों के मसौदे में (ड्राफ्ट, जिसे कांग्रेस के कराची अधिवेशन, मार्च, 1931 में स्वीकार कर लिया गया था) जवाहरलाल ने साफ-साफ लिखा :

"जनता के शोषण को समाप्त करने के लिए, राजनीतिक आजादी में करोड़ों भूखे लोगों की वास्तविक आर्थिक आजादी भी अवश्य शामिल होनी चाहिये" । उन्होंने आगे ये मांगे उठायीं :

- मजदूरों के लिए निर्वाह-वेतन,
- सम्पत्ति पर विशेष कर, और
- मुख्य उद्योगों, खनिज संसाधनों, रेलों, जलमार्गों, पोत परिवहन और यातायात के अन्य साधनों पर राज्य का नियंत्रण ।

व्यक्तिगत रूप से जवाहरलाल निजी सम्पत्ति की प्रथा से भी छुटकारा पाने के इच्छुक थे, उनके अनुसार "यह समाज में किसी एक व्यक्ति विशेष को ख़तरनाक हद तक शक्ति देती है" ।

फिर भी इस विषय पर उनके लिए उन अनेकों कांग्रेसियों का समर्थन प्राप्त करना संभव नहीं था जो ज़मींदारी उन्मूलन और भूमिहीनों को भूमि आबंटन की मांगों के विभिन्न वर्गीय हितों का प्रतिनिधित्व करते थे । जो भी हो 1931 के मौलिक अधिकारों और आर्थिक कार्यक्रमों को कांग्रेस के समाजवाद की ओर बढ़ने में एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में लिया जाना चाहिए ।

उत्साही साम्राज्यवाद-विरोधियों के रूप में जवाहरलाल और सुभाष दोनों ही गांधी-इरविन समझौते (मार्च, 1931) के लागू होने से नाखुश थे । उन्हें संविधानवाद पर चर्चा करने के लिए लंदन में हुई दूसरी गोल मेज़ कांफ्रेंस (सितम्बर से दिसम्बर, 1931) में कांग्रेस की निरर्थक हिस्सेदारी से कुछ परिणाम निकलने की उम्मीद नहीं थी । उन्हें सविनय अवज्ञा आंदोलन (मई, 1933) के औपचारिक रूप से वापस लेने में भी कोई लाभ नहीं दिखाई पड़ा । सुभाष की कुंठा ने उन्हें यथासमय कांग्रेस और देश को नेतृत्व देने में गांधी जी की क्षमता पर भी प्रश्न चिह्न लगाने और किसी ऐसे नेता की तलाश करने के लिए मजबूर कर दिया जो समझौता न करता हो । जवाहरलाल के असंतोष ने उन्हें कांग्रेस की गतिविधियों के निर्णायक प्रभावों और दबावों के प्रति और सजग बना दिया । साथ ही उन्होंने एक अत्यधिक जनप्रिय नेता के नेतृत्व में कांग्रेस की एकता को मज़बूत बनाने की आवश्यकता को महसूस कराया ।

26.7 कांग्रेस नीति पर प्रभाव

सविनय अवज्ञा आंदोलन की समाप्ति के चरण में जबकि जवाहरलाल ने यू. पी. किसान आंदोलन (इलाहाबाद, रायबरेली, इटावा, उन्नाव और कानपुर) में पुनः रुचि लेना शुरू किया तब सुभाष मज़दूर आंदोलन में रुचि ले रहे थे । फिर भी दोनों ने नौजवानों, छात्रों और ग़रीबों के बीच अपने प्रभाव को बनाए रखा और उन्हें एक परिवर्तनगामी और जुझारू संघर्ष की ओर प्रेरित किया । अन्तोगत्वा

इससे कांग्रेस संगठन के भीतर ही कांग्रेस समाजवादी पार्टी (मई, 1934) के गठन में आसानी हुई । वास्तव में इस नई पार्टी के पीछे की प्रेरक शक्ति के रूप में जवाहरलाल नेहरू ही थे । फिर भी न तो उन्होंने और न ही सुभाष ने इसमें हिस्सा लिया, जबकि दोनों ने ही मुख्य मुद्दों पर अपना समर्थन जताया । जेल के अंदर और बाहर तथा बीच-बीच में यूरोपीय यात्राओं (1933 से 1936 तक और फिर 1937-38 में सुभाष तथा 1936 और 1938 में जवाहरलाल की यात्राएं) से सुभाष और जवाहरलाल ने अपने-अपने दृष्टिकोणों को और अधिक सुचारू रूप से प्रतिपादित किया । सुभाष ने अपने-आपको उत्तरोत्तर स्वतंत्रता के लिए भारत के संघर्ष को तेज करने के नये ढंग और नयी नीतियों की तलाश तक सीमित कर लिया था । शासकों का खुलकर सामना करने के लिए वे उतावले थे । जवाहरलाल भी भारत में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को तीव्र करने के विषय में उतने ही चिंतित थे । इसके साथ ही उन्होंने इसे देश के भीतर ही उठ रहे सामाजिक आर्थिक संघर्ष से जोड़ने की आवश्यकता को तीव्रता से महसूस किया । उन्होंने बदलती हुई अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति के अनुसार ही उचित परिवर्तन करने का समर्थन किया ।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ़ सफलता प्राप्त करने के विचार से जवाहरलाल इस बात की वकालत करते रहे कि कांग्रेस जैसे राष्ट्रीय संगठन के लिए यह आवश्यक है कि वह सभी वर्गों के लोगों और उससे अधिक निम्न स्तरीय लोगों के हितों को लामबद करे । परन्तु जब तक उनके अधिकारी को शोषकों (जोकि साम्राज्यवाद के साथ हैं) से प्राप्त नहीं किया जायेगा, तब तक न तो भारी संख्या में जनता को एकत्रित करना ही संभव हो पायेगा और न ही वर्ग और समुदाय जैसी श्रेणियों में भेद ही समाप्त हो पायेगा ।

इस साम्राज्यवाद विरोधी जन संघर्ष को सफल बनाने की इस आवश्यक शर्त को पूरा करने के लिए यह भी जरूरी था कि कांग्रेस के पास एक स्वतंत्र, मुक्त और धर्म निरपेक्ष भारत के भविष्य का खाका भी हो । इसीलिए कांग्रेस को इन बातों के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए :

- वयस्क मताधिकार पर आधारित चुनाव,
- सभी भारतीयों के अधिकारों और सुविधाओं हेतु एक संविधान सभा (Constituent Assembly)
- लम्बे अर्से से चले आ रहे सामाजिक और आर्थिक अन्यायों का अंत,
- आधुनिक उद्योगों की सहायता से आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति ।

जवाहरलाल ने महसूस किया कि यह उस समय नहीं होना चाहिए जब अंदरूनी झगड़े चल रहे हों बल्कि भारत की परिस्थितियों को सामने रखकर राष्ट्रीय सहमति से ऐसा करना चाहिए । दूसरे शब्दों में, जवाहरलाल ने भारत में जनतांत्रिक समाजवाद के सिद्धांतों को अपनाने के लिए लगातार वकालत की थी और वे अंत में कांग्रेस को समाजवाद के पक्ष में मोड़ने में सफल हुए ।

लखनऊ (दिसम्बर, 1935) और फैज़पुर (दिसम्बर, 1936) अधिवेशनों का अध्यक्ष चुने जाने के बाद नेहरू ने अपने विभिन्न भाषणों और वक्तव्यों तथा विभिन्न कथनों के द्वारा अपने समाजवादी विचारों का और अधिक खुलासा किया । कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से उन्हें अक्सर कार्यकारिणी समिति में जहां असमाजवादी (और कभी समाजवाद-विरोधी) बहुमत के विचारों को झेलना पड़ा था । 1935 के ऐक्ट के तहत कांग्रेस द्वारा चुनावों के बाद 1937 में सत्ता स्वीकार करने के मुद्दे पर हार माननी पड़ी थी और असफलता का मुंह देखना पड़ा था । मुसलमानों के साथ "जन सम्पर्क" की उनकी योजना ध्वस्त कर दी गयी थी । फिर भी जवाहरलाल को निम्नलिखित मुद्दों पर कुछ महत्वपूर्ण सफलताएं भी मिली :

- भूमि संबंधी प्रश्न पर (फ़ैज़पुर कांग्रेस में उदार कृषि कार्यक्रम को तैयार करने में योगदान देकर) ।
- संविधान के प्रश्न पर (एक चुनी हुई संविधान सभा) (Constituent Assembly) की मांग को सामने ला कर ।
- नागरिक स्वतंत्रता के प्रश्न पर (कांग्रेस के प्रांतीय मंत्रिमंडलों को सभी राजनीतिक क़ैदियों को रिहा करने का आदेश देकर) ।
- एक ज़िम्मेदार सरकार के प्रश्न पर (भारतीय रजवाड़ों में उनके शासकों के आतंक के खिलाफ़ प्रजा मंडल आंदोलन का समर्थन करके) । और
- साम्राज्यवाद के सबसे घिनौने रूप फ़ासिज़्म के खिलाफ़ विश्वव्यापी प्रचार में (स्पैनिश गृह युद्ध में "प्रगतिशील शक्तियों" का पक्ष लेकर, इथोपिया पर इटली के आक्रमण के खिलाफ़ आवाज़ उठा कर और जापान द्वारा चीन पर आक्रमण के बाद चीन के लिए राहत कार्यों की व्यवस्था करके) ।

कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में सुभाष का कार्यकाल (हरिपुर अधिवेशन फरवरी, 1938 में उनके चुनाव के बाद) वैचारिक दृष्टिकोण से अपेक्षाकृत इतना आकर्षक नहीं था और अगले साल उनके कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए पुनः चुने जाने के प्रयासों से कांग्रेस "वामपंथी" और "दक्षिणपंथी" दलों में विभाजित हो गई थी । फिर भी भारत के औद्योगिकीकरण और सोवियत नमूने पर आधारित योजनाबद्ध आर्थिक विकास पर जोर देकर सुभाष ने कांग्रेस पर अपनी समाजवादी छाप छोड़ दी थी । वास्तव में जवाहरलाल की अध्यक्षता में कांग्रेस की राष्ट्रीय योजना समिति (नेशनल प्लानिंग कमेटी) बनाने में सुभाष की भूमिका प्रमुख थी ।

ऐसा प्रतीत होता है कि 1930 के आखिर तक, कांग्रेसियों में उदारमना और आगे विकास की ओर देखने वाले अपने उन अधिकांश प्रश्नों का जवाब पा गये थे जो कि उन्हें असहयोग आंदोलन के परिणाम से या 1920 के उत्तरार्द्ध में चिंतित कर रहे थे । 1940 के आरंभ में उनमें से अनेकों यह जान गये थे कि साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में उन्हें किससे लड़ना है । ऐसा प्रतीत होता था कि वे उस ढंग से परिचित हो गये थे जिसमें उन्हें साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में लोगों के वास्तविक दुखों को महत्व देकर सभी वर्ग और जाति के क्षेत्रीय विचारों से ऊपर उठना होगा । वे जान गये थे कि किस तरह साम्राज्यवादी शासन के सभी शोषितों और खासकर मेहनतकश जनता को संगठित करके संघर्ष को तीव्र और मज़बूत बनाना है । किन्तु अधिक महत्वपूर्ण यह है कि साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष उन्हें किस लक्ष्य तक ले जाएगा इसकी झलक भी उन्हें मिल गयी जान पड़ती थी । इन सभी निर्णायक तत्त्वों को धीरे-धीरे समझने और राष्ट्रीय आंदोलन के परिवर्तनवाद (Radicalisation) की तर्कसंगत प्रक्रिया का श्रेय जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस की दृष्टि और प्रयासों को जाता है ।

बोध प्रश्न 3

1) **भारतीय स्वतंत्रता लीग** (Independence for India League) **को क्यों शुरू किया गया ?**

....

....

....

....

....

2) **1927 के बाद भारतीय समाज के किन वर्गों ने बोस और नेहरू का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया ?**

....

....

....

....

....

3) **नेहरू और बोस के समाजवादी विचारों ने कांग्रेस की नीतियों को किस तरह प्रभावित किया ?**

....

....

....

....

....

26.8 सारांश

इस इकाई में आपने भारतीय राजनीति की मुख्य धारा में समाजवादी विचारों के विकास और प्रसार के बारे में पढ़ा । आपने यह देखा कि कांग्रेस की स्थापना के कई वर्षों बाद तक इन विचारों को प्रधानता नहीं मिली । फिर भी जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस जैसे नौजवान नेताओं के

हस्तक्षेप से, समाजवादी विचारों को प्रोत्साहन मिला और उन्होंने कांग्रेस के कार्यक्रमों तथा राजनीतिक गतिविधियों को प्रभावित किया । आपने यह भी देखा कि किस तरह नेहरू के समाजवादी विचारों को आगे बढ़ाने के प्रयासों को कुछ प्रमुख कांग्रेसियों द्वारा समर्थन प्राप्त नहीं हुआ जिन्होंने इन विचारों का विरोध किया और कांग्रेस को समाजवादी दिशा की ओर जाने से रोका । संक्षेप में, इन विचारों की महत्ता और नेहरू तथा बोस जैसे लोगों के प्रयासों को सिर्फ उनकी चरम सफलता या असफलता द्वारा ही नहीं बल्कि इसे उनके प्रभाव, उनकी निष्ठा और प्रतिबद्धता द्वारा आंका जाना चाहिए जिसके साथ उन्होंने अनुसरण किया और प्रचार प्रसार किया ।

26.9 शब्दावली

डोमीनियन स्टेटस : औपनिवेशिक सरकार की देख-रेख में स्वायत्त शासन ।

फेबियन सोशलिज्म : इस विचार के अनुसार समाजवाद मौजूदा सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का विकल्प नहीं था बल्कि इस समाजवाद का उद्देश्य समाज को शांतिपूर्ण उपायों द्वारा अधिक उदार बनाना था ।

परिवर्तन विरोधी : कांग्रेस नेतृत्व का वह दल जो काउंसिल (परिषद) के बहिष्कार का समर्थक और स्वराज का विरोधी था ।

परिवर्तन समर्थक : कांग्रेस नेतृत्व का वह दल जो स्वराजियों के कार्यक्रमों का समर्थक था ।

प्रजा मंडल आंदोलन : भारतीय रियासतों में प्रजातांत्रिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए जनता द्वारा चलाया गया आन्दोलन ।

26.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपको उन नेताओं के बारे में बताना चाहिए जिनके बारे में भाग 26.2 में चर्चा की गयी है ।
2) प्रारंभिक दौर के नेता आशंकित थे क्योंकि वे सोचते थे कि समाजवाद को अपनाने से भारत में वर्ग संघर्ष उत्पन्न होगा और शायद यह राष्ट्रीय आंदोलन को भी कमज़ोर कर देगा । भाग 26.2 भी देखिये ।
3) असहयोग आंदोलन को अचानक वापस ले लेने से एक आम निराशा व्याप्त थी तथा साम्प्रदायिक भेद बढ़ गया था । भाग 26.3 भी पढ़िये ।

बोध प्रश्न 2

1) अपने विदेश प्रवास के दौरान नेहरू ने अनेकों सभाओं में हिस्सा लिया और वे समाजवादी विचारकों से मिले । विस्तार के लिए उपभाग 26.4.1 पढ़िये ।
2) विश्व के सभी भागों में साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ निर्दिष्ट था । इस अर्थ में भारत का स्वाधीनता संग्राम भी इसी का एक हिस्सा था । उपभाग 26.4.2 और 26.4.3 भी पढ़िये ।

बोध प्रश्न 3

1) इंडिपेंडेंस फार इंडिया लीग की स्थापना डोमीनियन स्टेटस की धारणा का विरोध करने और पूर्ण स्वराज तथा भारतीय गणतंत्र की मांग के लिए की गयी थी । (भाग 26.6 देखिये)
2) 1927 के बाद नेहरू तथा बोस ने छात्रों, युवाओं और मज़दूरों की ओर ध्यान दिया । (भाग 26.6 देखिये)
3) नेहरू और बोस ने कांग्रेस को कृषि संबंधित प्रश्नों, नागरिक स्वतंत्रता के समर्थन और फासिज्म के विरुद्ध निर्णय लेने में प्रभावित किया । भाग 26.7 भी पढ़िये ।